शिक्षा और गाँव का बदलता परिदृश्य

विजय कुमार यादव*
ऋषभ कुमार मिश्र**

इस लेख में भारतीय गाँवों से संबंधित स्वातंत्र्योत्तर शोध कार्यों का सर्वेक्षण करते हुए उनकी अध्ययन दृष्टियों को प्रस्तुत किया गया है। यह लेख बताता है कि भारत के गाँव भौगोलिक इकाई होने के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई भी हैं। इस इकाई का नगर के विलोम रूप में अध्ययन करना हमारे शोध अध्ययन की सीमा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारतीय गाँवों में हुए बदलावों को समझना और तदनुरूप शिक्षा से संबंधित प्रश्नों का विश्लेषण करना हमारे अध्ययनों का उद्देश्य होना चाहिए। इस पृष्ठभूमि में यह लेख भारतीय गाँवों के सामाजिक-आर्थिक बदलावों को रेखांकित करते हुए शिक्षा से उनकी पारस्परिकता को प्रस्तुत करता है।

सामाजिक विज्ञान के शोध कार्यों में इस बात पर बल दिया गया है कि गाँव भारत की वास्तविक छवि प्रस्तुत करते हैं। भारतीय गाँवों को 'देशज' जीवन का प्रतीक माना गया है। गाँवों को भारतीय संस्कृति के बुनियादी मूल्यों को प्रदर्शित करने वाली इकाई के रूप में देखा गया है (बेते, 1980, पृष्ठ संख्या 108)। औपनिवेशिक शासन के दौरान गाँवों को 'गाँव गणराज्य की भूमिका' के रूप में स्वीकार्यता मिली और गाँव को एक स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर सामूहिक इकाई माना गया। इस संदर्भ में चार्ल्स मेटकाफ के विचार को उदाहरणस्वरूप देख सकते हैं, "…भारत के गाँव समुदाय छोटे गणराज्य थे, उनके पास अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ थीं और वे विदेशी मामलों में तकरीबन स्वतंत्र थे" (कोहेन, 1987, पृष्ठ संख्या 213 से उद्धृत)। अंग्रेजी शासकों के विपरीत, भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के नेताओं के लिए गाँव पहले से मौजूद एक सांस्कृतिक संरचना न होकर राजनीतिक सक्रियता और बदलाव का स्थान था। इसी में वे भारत की वास्तविक छवि को देखते थे। इस तथ्य के समर्थन में जोधका (2019) और कुमार (2018) के कार्यों से प्रमाण मिलता है। इनके अनुसार गांधी का यह मानना था कि भारतीय सभ्यता का असली रूप गाँव की जीवनशैली में विद्यमान है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। वे चाहते थे कि आधुनिक भारत के निर्माण में गाँवों की महत्वपूर्ण भूमिका हो तथा भारत का विकास आम आदमी तथा गरीबों की ज़रूरतों के हिसाब से हो। इसके लिए उन्होंने पश्चिमी ज्ञान, सूचना और परीक्षा आधारित आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा से अलग कौशल युक्त शिक्षा पर अधिक ज़ोर दिया

**शोधार्थी*, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001
***असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र 442001

© NCERT not to be republished

और नई तालीम की स्थापना की, जहाँ गाँधी भारत को पश्चिमी आधुनिकता और अति विकास की तकनीक के दुष्परिणामों से बचाना चाहते थे। गांधी से इतर अंबेडकर ने गाँव को एक ऐसे स्थान के रूप में देखा, जहाँ हिन्दू साम्राज्यवाद का बोलबाला था, असमानता व्याप्त थी और जहाँ दलितों का शोषण होता था। उन्होंने गाँव को अज्ञानता का महाकुंभ और संकीर्ण मानसिकता का गढ़ कहा था।

वहीं, नेहरू आधुनिकता के पक्ष में थे। उनका मानना था कि गाँव अत्यधिक पिछड़े हुए हैं, जिन्हें शिक्षित कर आधुनिक समाज के करीब लाया जा सकता है। नेहरू से इतर नानाजी देशमुख गाँव को भारतीय समाज एवं संस्कृति का परिचायक मानते थे। यद्यपि वे भी नेहरू की भाँति ग्रामीण क्षेत्रों में बदलाव के समर्थक थे, किंतु गाँव को पश्चिमी आधुनिकता और मशीनीकरण की बलि नहीं चढ़ाना चाहते थे। वे चाहते थे कि ग्रामीण कृषि का विकास हो, सामाजिक रूढ़ियाँ समाप्त हों, किंतु गाँव की संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक मूल्यों में क्षरण न हो। देशमुख जी का मानना था कि गाँव का सामाजिक एवं आर्थिक विकास अवश्य होना चाहिए, किंतु संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक मूल्यों का संरक्षण और विकास भी किया जाना चाहिए। वे राष्ट्र के निर्माण में गाँवों की महत्वपूर्ण भूमिका मानते थे।[1]

चूँकि नेहरू आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी से काफी प्रभावित थे, अतः वे चाहते थे कि गाँव भी उस आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी से परिचित हों। वे गाँव को शिक्षित और विकसित कर भारत का विकास करना चाहते थे। उनका विचार था कि भारतीय किसान आधुनिक तकनीकों से परिचित हों, जिससे वे इन तकनीकों का उपयोग कर अपने उत्पादन में वृद्धि कर सकें। इसके लिए उन्होंने योजना आयोग द्वारा बनाए गए प्रथम पंचवर्षीय योजना में 'हैराड-डोमार मॉडल' पर आधारित अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण विकास और कृषि को उच्च प्राथमिकता दी (योजना आयोग की रिपोर्ट, 1951)। परिणामस्वरूप गाँवों तक सरकारी योजनाएँ पहुँचीं, जिससे गाँव की तसवीर भी बदली, किंतु गाँव का उस तरह से विकास न हो सका जैसा नेहरू चाहते थे। गाँव औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने वाले एजेंट बन गए।

राजनीतिक और अकादमिक जगत के विचारकों ने यह मान लिया कि उद्योगों और शहरों का विकास होने से खेती-बाड़ी खत्म हो जाएगी। गाँव या तो खत्म हो जाएँगे अथवा धीरे-धीरे शहरों में विलीन हो जाएँगे तथा देश विकसित हो जाएगा, किंतु वास्तविकता भिन्न रही है। 'उद्योग भी लगे, शहर भी बढ़े, गरीबी भी घटी, पर गाँव खत्म नहीं हुए (कुमार, 2018)। भारतीय गाँव देश में सेवा क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ सूचना और कंप्यूटर क्रांति का हिस्सा बन गए। शोध अध्ययनों (कुमार, 2018) से पता चलता है कि कुछ गाँव शहरों में विलीन हो गए, कुछ नगर निगम का हिस्सा बन गए और अच्छी नौकरी, अच्छे वेतन तथा भव्य जीवन की तलाश में ग्रामीण मज़दूरों का शहरों की ओर पलायन हुआ है, जिसके कारण गाँव का एक बड़ा भाग शहरों तथा कस्बों के अंदर तथा उनके मुहाने पर फैल गया है। भारतीय गाँव देखते ही देखते बड़े-बड़े अर्थशास्त्रियों और समाज विज्ञानियों के अनुमानों के विपरीत वैश्विक

[1] इस संदर्भ में विस्तृत चर्चा के लिए जोधका (2019) व कुमार (2018) के शोध पत्र का अध्ययन किया जा सकता है।

© NCERT not to be republished

अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन गए। शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार, सूचना और कंप्यूटर क्रांति ने गाँवों को और अधिक समृद्ध किया है।

पिछले चार दशकों में ग्रामीण भारत की कुल जनसंख्या के आकार और अनुपात, इसकी आर्थिक स्थिति और शिक्षा में बड़ा बदलाव आया है। भारत की जनगणना रिपोर्ट बताती है कि पिछले चार दशकों में भारत के गाँवों और गाँव की जनसंख्या में लगातार वृद्धि हुई है। यह केवल जननांकिकीय वृद्धि नहीं है। भारत में नई आर्थिक नीति के बाद उदारीकरण के दौरान भी गाँवों का स्वरूप बदला है, किंतु इससे गाँवों के आकार एवं अनुपात में कमी नहीं हुई है (कुमार, 2018)। इस दौरान गाँव की सामाजिक और आर्थिक संरचना में पर्याप्त बदलाव हुआ है। उदाहरण के लिए, श्रीवास्तव एवं अन्य (2017) के अनुसार आधुनिक उद्योगों की स्थापना एवं विकास से श्रमिकों की माँग में वृद्धि हुई है, जिसने ग्रामीण श्रमिकों को अपनी ओर आकर्षित किया है। परिणामस्वरूप कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर निर्भर गाँवों में बाह्य आय स्रोतों का प्रसार हुआ और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि की निर्भरता कम हुई। इन बदलावों ने आधुनिक औद्योगिक एवं शहरी समाज तथा ग्रामीण समाजों के बीच पारस्परिक जुड़ाव को बढ़ावा दिया है, किंतु इन समाजों के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों में विषमता इनके आपसी संबंधों को चुनौती देती है। इन विषमताओं को दूर करने और शहरों तथा उद्योगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ग्रामीण शिक्षा में बदलावों को परिकल्पित किया गया है।

ग्रामीण समाज को शहरी और आधुनिक औद्योगिक समाज से जोड़ने और गाँव के लोगों को उसके अनुरूप ढालने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा में प्रसार और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार का प्रयास किया गया है। स्वतंत्र भारत की प्रत्येक शिक्षा नीति में ग्रामीण भारत की शिक्षा को विशेष स्थान दिया गया है, जैसे— विद्यालयों में संसाधन सुधार, अध्यापकों की नियुक्ति, शिक्षण पद्धति में सुधार, कृषि और व्यावसायिक शिक्षा जैसे पाठ्यक्रमों को शुरू करना इत्यादि। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986* और उसकी क्रियान्वयन योजना 1992 के बाद, मध्याह्न भोजन योजना, सर्व शिक्षा अभियान 2001 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 जैसी नीतियों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया गया है, किंतु शिक्षा की गुणवत्ता के आधार के रूप में विद्यार्थियों के नामांकन एवं उपलब्धि को ज़्यादा महत्व दिया गया है (सारंगपानी, 2010) और इसकी प्राप्ति को ही शिक्षा व्यवस्था की सफलता का पैमाना माना जाने लगा है (मिश्र, 2018)।

पर क्या केवल इन घटकों को ही शिक्षा की गुणवत्ता का आधार बनाया जा सकता है? इस संबंध में ये घटक शिक्षा की गुणवत्ता के बारे में आंशिक निष्कर्ष ही प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, असर रिपोर्ट, 2019 में गाँव में स्कूली शिक्षा को आधुनिक नगरीय स्कूलों की तुलना में पिछड़ा बताया गया है। इस रिपोर्ट में भी बच्चे की उपलब्धि को ही शिक्षा की गुणवत्ता का आधार मानकर शिक्षा की दिशा तय करने की कोशिश की गई है। इसमें शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध, कक्षागत एवं कक्षा के बाहर होने वाली गतिविधियों, विद्यार्थियों की भागीदारी जैसे महत्वपूर्ण कारकों की कोई जानकारी नहीं मिलती है। इसमें गाँव के स्कूलों को ऐसी जनसंख्या माना गया है जो अपेक्षित उपलब्धि की प्राप्ति के अभाव में गुणवत्ता के पैमाने पर पीछे होते जा रहे हैं। यद्यपि औद्योगिकीकरण,

© NCERT not to be republished

सूचना और संचार क्रांति, तकनीकी विकास और शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार ने ग्रामीण जीवन को काफी प्रभावित किया है (मंजुनाथ, 2014)। किंतु इस शिक्षा प्रणाली में औद्योगिक एवं शहरीकृत समाज तथा ग्रामीण समाज की संस्कृतियों, मानकों तथा मूल्यों जैसी विषमताओं को दूर करने का लक्ष्य उपेक्षित दिखता है। इस पृष्ठभूमि में हमें विचार करना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी के गाँव के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में किस प्रकार के परिवर्तन आए हैं? और उन परिवर्तनों में शिक्षा की क्या भूमिका रही है? तथा ग्रामीण परिवेश में हो रहे ये परिवर्तन और आधुनिक शिक्षा ग्रामीण युवाओं का भविष्य कैसे गढ़ रही है?

सामाजिक संरचना का पुनर्गठन

मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने गाँव की सामाजिक संरचना को समझने के लिए अपने अध्ययनों में समाज की जिन बुनियादी विशेषताओं का उपयोग किया है, उसमें जातिगत समूहों, पारिवारिक इकाई, जजमानी व्यवस्था, ज़मींदारी व्यवस्था, मालिक-नौकर के बीच के संबंधों इत्यादि का सहारा लिया है (श्रीनिवास, 1950; दुबे, 1954; जोधका, 2014)। श्रीनिवास के कार्य इस दिशा में प्राथमिक और महत्वपूर्ण प्रतिमान हैं। 1950 के दशक में श्रीनिवास द्वारा गाँव की सामाजिक संरचना को समझने के लिए जाति आधारित ऊर्ध्वाधर श्रेणी को आधार माना गया, उन्होंने जाति के संदर्भ में लिखा है कि ग्रामीण सत्ता प्रभुत्वशाली जातियों के हाथों में केंद्रित रही है और ये प्रभुत्वशाली जातियाँ विभिन्न रूपों में निम्न और पिछड़ी जातियों की सहायक थीं। भू-स्वामित्व और ज़मींदारी ज़्यादातर इन्हीं जातियों के हाथों में थी (शर्मा, 1953; दुबे, 1954)। निम्न जातियों का व्यक्ति उच्च जाति का जोतदार होता था, उनके खेत में मज़दूरी करता था, पशुओं आदि की देखभाल करता था और उनके घर के काम-काज में योगदान करता था। बदले में उन्हें कुछ अनाज, धन या अन्य ज़रूरत की वस्तुएँ दे दी जाती थीं। यद्यपि निम्न जातियों के लोग उच्च और ज़मींदार जातियों के घरों का कार्य करते थे, किंतु उच्च जाति के लोग निम्न जातियों को अछूत मानते थे।

बेते (1962) एवं शर्मा (1953), लिखते हैं कि, "हिंदू धर्म की कर्मकाण्डीय अवधारणाओं के अनुसार निम्न जातियों के खान-पान की आदतों और प्रथाओं को पूरी तरह अशुद्ध माना जाता था, किंतु विभिन्न अवसरों पर उच्च जाति और निम्न जाति की औरतें एक ही पूजा स्थल पर पूजा-अनुष्ठान के कार्य करती थीं। जातियों के भीतर भी उप-जातियाँ थीं। गाँव के भीतर जातीय, आर्थिक और पारिवारिक स्तर पर भिन्नता थी। उच्च और प्रभु-जमींदार जातियों का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण था। पिछड़ी और निम्न जातियाँ विभिन्न अवसरों पर खुलकर अपनी भावनाएँ भी व्यक्त नहीं कर सकती थीं।" अध्ययनों (शर्मा, 1953; दुबे, 1954; बेते, 1962) से यह भी स्पष्ट होता है कि अनेक भिन्नताओं के बावजूद गाँव में रहने वाले विभिन्न जातियों और समुदायों के लोग गाँव की परंपराओं, सामाजिक एवं आर्थिक और कर्मकाण्डीय आवश्यकताओं से पारस्परिक रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। लोगों की दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ उन्हें एक-दूसरे से बाँधे रखती थीं।

सत्तर के दशक में हुई हरित क्रांति ने कृषकों को आर्थिक रूप से सशक्त किया है। यद्यपि इस क्रांति में भागीदार बड़े भू-पतियों को तो अधिक लाभ हुआ,

© NCERT not to be republished

किंतु नई खेती में ज़्यादा पूँजी की माँग के कारण छोटे किसानों को अनौपचारिक स्रोतों से ऋण लेना पड़ा। परिणामस्वरूप बड़े भू-पतियों और लघु कृषकों के बीच एक आर्थिक खाई-सी बन गई (धनाग्रे, 1987)। हरित क्रांति के बाद खेती में प्रयुक्त होने वाली अधिकांश वस्तुओं के लिए किसानों को बाज़ार पर निर्भर होना पड़ा। ऐसे में उनके आपसी सामाजिक संबंधों में भी कमी आई। हरित क्रांति से जिन कृषकों ने अधिशेष प्राप्त किया था, वे अपने अधिशेष का अधिकांश भाग शहरी व्यापार, शिक्षा एवं गैर-खेतिहर गतिविधियों में करने लगे (जोधका, 2019 से उद्धृत)। इससे उनकी सामाजिक छवि में भी बदलाव आया।

इसके बाद भारत में औद्योगिक क्रांति, नई प्रौद्योगिकी और बाज़ार व्यवस्था के बढ़ते प्रभावों ने पुराने ग्राहक-मालिक संबंध को कमज़ोर किया। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने भूमिहीन गरीब श्रमिकों को गैर-खेतिहर रोज़गार की ओर आकर्षित किया है। ग्रामीण भूमिहीन निम्न और पिछड़ी जातियों के मजदूरों को गैर-खेतिहर रोज़गार मिलाने से उनकी उच्च और ज़मींदार जातियों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है। परिणामस्वरूप श्रमिकों को अपने श्रम का उचित मूल्य प्राप्त होने लगा और जाति की पुरानी विचारधारा का क्षरण हुआ (जोधका, 2014; कुमार, 2018)। आर्थिक सुधारों और शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने अछूत और निम्न समझी जाने वाली जातियों की सामाजिक और बौद्धिक दशा में सुधार किया है। पारंपरिक पद-सोपानीय संरचना के टूटने से निम्न और पिछड़ी जातियों में एक स्वतंत्र नागरिकता का बोध विकसित हुआ है। शिक्षा ने उन्हें अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया है।

औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने ग्रामीण सामाजिक संरचना में जातिगत समूहों, जजमानी व्यवस्था, ज़मींदारी व्यवस्था, मालिक-नौकर संबंधों में परिवर्तन के साथ ही गाँव के पारिवारिक और सामाजिक समूहों में महिलाओं एवं लड़कियों की स्थिति और उनके सोचने-समझने के दृष्टिकोण में भी बड़े बदलाव किए हैं। चौधरी (2014) के अनुसार गाँव न केवल पुरुषवादी सत्ता में जकड़ा हुआ है, बल्कि आधुनिकता द्वारा मर्दाना पहचान के कुछ निश्चित आयामों को मज़बूती भी मिली है। हरियाणा के गाँव का उदाहरण लेते हुए उन्होंने लिखा है कि, स्कूल, चौपाल, मनोरंजन की गतिविधियों, शराब पीने, खेल या सबसे शक्तिशाली पंचायत आदि प्रत्येक स्थान पर पुरुषों का वर्चस्व है। इस प्रकार के मर्दाना स्थान महिलाओं पर नियंत्रण स्थापित करते हैं तथा समाज के अन्य लोगों के साथ उनके संबंधों को सीमित करते हैं।

वहीं कलपागम (2008), सिद्दीकी और अन्य (2017), जोधका और कुमार (2017) के अनुसार मानवशास्त्रियों का यह मानना है कि ग्रामीण महिलाएँ आधुनिकता को अपने निजी जीवन में चुनाव करने की आज़ादी के संदर्भ में देखती हैं। वे इस आज़ादी से अपने निजी जीवन के रहन सहन, पसंद-नापसंद, पहनावे-ओढ़ावे तथा घर से बाहर निकलकर अपनी सामाजिक पहचान बनाने में पितृसत्तात्मक पाबंदी को समाप्त करना चाहती हैं। आर्थिक सुधारों एवं शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने ग्रामीण महिलाओं को इस आज़ादी के सपने तथा उनकी सामाजिक दशा को और मज़बूत किया है। आज ग्रामीण महिलाएँ खुलकर राजनीति में भाग ले रही हैं तथा कृषि में

© NCERT not to be republished

उनकी भागीदारी बढ़ी है। ग्रामीण लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने, अपना भविष्य निर्मित करने, घर से बाहर काम करने, अपना जीवनसाथी चुनने इत्यादि का अवसर प्राप्त हुआ है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का बदलता ढाँचा

गाँव की अर्थव्यवस्था का मूल आधार खेती-बाड़ी रहा है, किंतु पिछले चार दशकों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव देखने को मिले हैं। विभिन्न शोध कार्यों में इसका उल्लेख भी किया गया है। उदाहरण के लिए, कुमार (2018) ने अपने शोध में पाया है कि किसान अब प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर रखने वाली संस्कृति का वाहक नहीं रह गया है। आज का किसान प्रकृति का दोहन करने वाला उद्यमी बन गया है। आय बढ़ाने के लिए किसान भूमि की गुणवत्ता के क्षरण को नज़रअंदाज करते हुए रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग करने लगा है। इसी तरह जोधका (2014) का मानना है कि हरित क्रांति के प्रभाव में नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग बढ़ा है, किंतु बाज़ारीकरण और महँगी प्रौद्योगिकी से कृषि लागतों में वृद्धि हुई है। उत्पादन में अपेक्षाकृत वृद्धि न होने से मध्यम एवं लघु कृषकों को अत्यधिक नुकसान सहना पड़ा है। स्थिति यह है कि हरित क्रांति के बाद की तीसरी पीढ़ी का किसान अब खेती नहीं करना चाहता है (जोधका, 2014)।

इसी को विस्तार देते हुए याकन्ना (2017) और जोशी (2018) के शोध में यह पाया गया है कि किसान श्रमिकों में अधिकांश पुरुषों का पलायन शहरों की ओर होने से कृषि कार्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की चकाचौंध ने नई पीढ़ी के किसानों को तेज़ी से अपनी ओर आकर्षित किया है। किसान के बेटा-बेटी और बहू न तो अब दूध निकालना चाहते हैं और न गोबर में काम करना चाहते हैं। खाने-पीने की वस्तुओं तथा दैनिक जीवन की अन्य ज़रूरतों से लेकर खेती के सामान के लिए भी अब किसान बाज़ारों पर निर्भर हो गया है। कहा जाए तो किसान लगभग पूरी तरह से बाज़ार और मुनाफ़े की अर्थव्यवस्था पर निर्भर हो चुका है। सवाल यह है कि इस प्रकार का बदलाव क्यों हुआ है? इसके लिए कई कारकों को ज़िम्मेदार माना जा सकता है, जिसमें महँगी तकनीकी, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और बाज़ारीकरण इत्यादि शामिल हैं, किंतु इसका एक महत्वपूर्ण कारण आधुनिक शिक्षा में भी खोजा जा सकता है। ध्यातव्य है कि शिक्षा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बीच बदलाव केवल शिक्षा से अपेक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से प्रत्येक शैक्षिक फ़ैसले का हिस्सा है।

लंबी और सफल शिक्षा हासिल करने के बाद लोगों के पास वैकल्पिक पेशा अपनाने और ज़्यादा आय हासिल करने की योग्यता आ जाती है। साथ ही यह लोगों में स्वयं जागरूकता भी पैदा करती है। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर देश में शिक्षा का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार भी किया गया। विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों से शिक्षा की पहुँच दूर-दराज़ के गाँवों तक भी पहुँची है, जिससे ग्रामीण विद्यार्थी लाभान्वित हो रहे हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने ग्रामीण युवाओं को परंपरागत नज़रिये से इतर अधुनातन जीवन के अनुरूप सोचने और सपने बुनने के लिए प्रेरित किया है। आज ग्रामीण युवा शिक्षा के माध्यम से अपने भविष्य का निर्माण, आर्थिक जीवन में सुधार और अच्छे जीवनसाथी की तलाश

© NCERT not to be republished

करने की चाह रखते हैं। लड़के और लड़कियाँ दोनों ही सरकारी नौकरी प्राप्त कर अपनी आर्थिक और सामाजिक दशा में सुधार करना चाहते हैं। सतेन्द्र कुमार (2018) ने यह रेखांकित किया है कि एक तरफ जहाँ आधुनिक शिक्षा ने ग्रामीण युवाओं के सपनों को नए पंख दिए हैं, वहीं ग्रामीण जीवनशैली की आवश्यकताओं से परे दिशाहीन और गुणवत्ता रहित शिक्षा व्यवस्था ने गाँव का अस्तित्व और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के मूल आधार 'कृषि' के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है। आज एक छोटे किसान या भूमिहीन मज़दूर का शिक्षित पुत्र अमूमन शहर जाना चाहता है। वह कृषि और पशुपालन से इतर सरकारी एवं प्राइवेट नौकरियों तथा अन्य गैर-कृषि व्यवसायों में अपना आर्थिक भविष्य देखता है।

इसे कुमार (2018) ने ग्रामीण जीवन के लिए अप्रासंगिक शिक्षा का विस्थापनकारी प्रभाव बताया है। ग्रामीण युवाओं के मस्तिष्क पर आधुनिक शिक्षा के नकारात्मक प्रभाव का आमतौर पर प्रचलित उदाहरण यह है कि किसान का शिक्षित पुत्र अब खेती का काम नहीं करना चाहता है, वह बाहर नौकरी या अन्य औद्योगिक कार्यों को अपने आर्थिक जीवन का आधार बना रहा है। (कुमार, कृष्ण 2018) जोधका (2014) ने अपने अध्ययन में इस बात का उल्लेख किया है कि हरित क्रांति के बाद से बड़े भू-स्वामियों ने अपने अधिशेष का अधिकांश भाग शिक्षा पर खर्च किया और अपने बच्चों को बाहर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा है। शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने वहीं पर नौकरी कर ली। इनमें से अधिकांश लोगों के पास अभी भी अपनी ज़मीन का स्वामित्व था, किंतु अब न इनके पास खेती करने का समय रहता और न ही खेतीबाड़ी के प्रति इनका रुझान रहा था। गाँव के भूमिहीन मज़दूर के बच्चे भी अच्छी शिक्षा प्राप्त कर शहर जाना चाहते हैं, नौकरी करना चाहते हैं तथा अन्य कृषिगत व्यवसाय करना चाहते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, देश की 68.8 प्रतिशत जनसंख्या और 72.4 प्रतिशत कार्य बल ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। इसके बावजूद आज कृषि एक अंतिम एवं प्रमुख आर्थिक साधन है। गाँव में उभरती यह गैर-खेतिहर अर्थव्यवस्था घटते जोत के आकार, भूमि के स्वामित्व और जातीय संरचना में होने वाले बदलावों के साथ-साथ ग्रामीण जीवनशैली की आवश्यकताओं से परे गुणवत्ता रहित आधुनिक शिक्षा का परिणाम है।

आज गाँव कोई आदिम इकाई नहीं रह गया है। गाँव में भी जटिलताएँ बढ़ी हैं और ग्रामीण समाज के आपसी रिश्ते बदल रहे हैं। जाति आधारित पद-सोपानिक व्यवस्था का क्षरण हुआ है, अब प्रत्येक जाति एक-दूसरे के साथ खाने-पीने, उठने-बैठने और विभिन्न अवसरों और त्यौहारों पर सामूहिक रूप से मिलने-जुलने को अपने सामाजिक व्यवस्था का अंग स्वीकार करती हैं। ग्रामीण परिवार में महिलाओं की स्थिति मज़बूत हुई है और भूमि के स्वामित्व में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। जाति और समुदाय का लड़कियों और उनकी स्वतंत्रता को लेकर दृष्टिकोण भी बदला है, किंतु अभी भी पुरुषवादी सत्ता का प्रभाव गहरा है। गाँव पहले की तुलना में आर्थिक रूप से सशक्त हुए हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने गैर-खेतिहर अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया है। नगरीकरण, मशीनीकरण और अधिक उत्पादक प्रवृत्ति के कारण किसानों और प्रकृति के पारस्परिक

© NCERT not to be republished

संबंध भी बदले हैं। आज का किसान प्रकृति का संरक्षक नहीं रह गया है, वह प्रकृति का दोहन करने वाला उद्यमी बन गया है। गाँव में गैर-खेतिहार व्यवसायों के प्रति अधिक आकर्षण और गाँव की आवश्यकता से परे शिक्षा ने कृषि के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है। आज गाँव नगरीकरण, औद्योगिकीकरण एवं वैश्वीकरण के प्रभाव में हैं। इन सब के बीच गाँव में जो शिक्षा की उपस्थिति है, उसने ग्रामीण समाज की चेतना को प्रभावित किया है। इन बदलावों के आलोक में ही शिक्षा की व्यक्तिगत विकास में भूमिका, शिक्षा की संस्थागत उपस्थिति और शिक्षा की स्वयं इन दबावों से प्रभावित होने की प्रक्रिया को समझाने की आवश्यकता है। जटिल से जटिलतर होते जा रहे ग्रामीण परिवेश में शिक्षा को सरलीकृत आदिम इकाई मानकर अध्ययन करना हमारे विश्लेषण के दायरे को सीमित कर देता है। भारतीय ग्रामीण परिवेश से जुड़े शिक्षा के अध्ययनों की सीमा यही दृष्टि है। हम भारतीय गाँव के विद्यालयों को पिछड़ा हुआ, अधिगम की दृष्टि से कमज़ोर, संसाधनों की दृष्टि से न्यून और शिक्षकों की दृष्टि से उपेक्षित मान लेते हैं, जबकि गाँव की सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक संरचना में हुए बदलाव सम्मिलित रूप से कैसे कार्य कर रहे हैं? हमें यह ध्यान रखना चाहिए। इन बदलावों का प्रभाव केवल विद्यार्थियों की उपलब्धि में परिलक्षित नहीं होता, बल्कि विद्यालय की संस्थागत उपस्थिति, अध्यापक-विद्यार्थी अंत:क्रिया, समुदाय और विद्यालय के संबंध को भी निर्धारित करता है। हमें इन संदर्भों को ध्यान में रखते हुए भारत के ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा को समझना होगा।

संदर्भ

एनुअल स्टेटस ऑफ़ एजुकेशन रिपोर्ट. 2019. *अर्ली इयर्स*. असर सेंटर, नयी दिल्ली. 12 दिसंबर, 2020 को http://img.asercentre.org/docs/ASER%202019/ASER2019%20report%20/aserreport2019earlyyearsfinal.pdf से प्राप्त किया गया.

———. 2018. *यंग चिल्ड्रन*. असर सेंटर, नयी दिल्ली. 12 दिसंबर, 2020 को http://img.asercentre.org/docs/ASER%202019/aser%202018%20young%20children/aser2018yo ungchildren.pdf से प्राप्त किया गया.

कलपागम, यू. 2008. मैरिज नॉर्म्स, चॉइस एंड एस्पिरेशन ऑफ़ रूरल वीमेन. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 43(21), पृष्ठ संख्या 53–63.

कुमार, के. 2018. रूअरैलिटी, मॉडर्निटी एंड एजुकेशन. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 49 (22), पृष्ठ संख्या 38–43.

कोहेन, बी.एस. 1987. *एन एंथ्रोपोलॉजिस्ट अमंग हिस्टॉरियंस एंड अदर एसेज*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

कुमार, सत्येंद्र. 2018. *बदलता गाँव बदलता देहात— नई सामाजिकता का उदय*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया. 1951. *द फ़र्स्ट फाइव ईयर प्लान— ए ड्राफ्ट आउटलाइन*. प्लानिंग कमीशन. 12 दिसंबर, 2020 को https://niti.gov.in/planningcommission.gov.in/docs/plans/planrel/fiveyr/index1.html से प्राप्त किया गया.

© NCERT not to be republished

चौधरी, पी. 2014. मस्क्युलाइन स्पेसेस— रूरल मेल कल्चर इन नार्थ इंडिया. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 49(47), पृष्ठ संख्या 41–49.

जोधका, एस.एस. 2014. इमर्जेंट रुअरैलिटी-रिविज़िटिंग विलेज लाइफ़ एंड अग्ररियन चेंज इन हरियाणा. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 49 (26 और 27), पृष्ठ संख्या 5–7.

जोधका एस.एस., और ए., कुमार. 2019. नॉन-फ़ॉर्म इकोनॉमी इन मधुबनी, बिहार— सोशल डाइनेमिक्स एंड एक्सक्लूशनरी रूरल ट्रांसफ़ॉर्मेशन. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 52(25 और 26), पृष्ठ संख्या 14–24.

जोधका, एस.एस., और के. एन., चौबे. 2019. *ग्रामीण क्षेत्रों में मानवशास्त्रीय अध्ययन— भारतीय ग्राम शृंखला I*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

———. 2019. *ग्रामीण विकास— परिप्रेक्ष्य, नीतियाँ और कार्यक्रम— भारतीय ग्राम शृंखला II*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

———. 2019. *ग्रामीण परिवेश का बदलता जीवन— सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य— भारतीय ग्राम शृंखला III*. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

जोशी, बी. 2018. रिसेंट ट्रेंड ऑफ़ रूरल आउट-माईग्रेशन एंड इट्स सोशियो-इकोनोमिक एंड एनवायरमेंटल इम्पैक्ट इन उत्तराखंड हिमालय. *जर्नल ऑफ़ अर्बन एंड रीजनल स्टडी ऑन कंटेंपरेरी इंडिया*. 4(2), पृष्ठ संख्या 1–14.

दुबे, एस.सी. 1954. ए डेक्कन विलेज. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 6(20), पृष्ठ संख्या 553–544.

धनाग्रे, डी.एन. 1987. ग्रीन रेवॉलूशन एंड सोशल इनइक्वालिटीज़ इन रूरल इंडिया. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 22(19, 20 और 21), पृष्ठ संख्या 137–144.

बेते, ए. 1962. श्रीपुरम— तंजौर ज़िले का एक गाँव. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 14(8), पृष्ठ संख्या 141–146.

मंजुनाथ, के. 2014. इम्पैक्ट ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन ऑन इंडियन रूरल एंड अर्बन लाइफ़. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इंजीनियरिंग एंड मैनेजमेंट साइंस*. 5(4), पृष्ठ संख्या 274–276.

मिश्र, आर.के. 2018. उपलब्धि सर्वेक्षणों का भूगोल और गाँवों के स्कूल. *शिक्षा विमर्श*. 20(6), पृष्ठ संख्या 24–30.

शर्मा, जे. 1953. ए बंगाल विलेज. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 5(32, 33 और 34), पृष्ठ संख्या 901–910.

श्रीवास्तव, आर., एस.के. चंद, और जे., सिंह. 2017. चेंज इन रूरल इकॉनामी ऑफ़ इंडिया, 1971 टू 2012— लेसंस फ़ॉर जॉब-लेड ग्रोथ. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 52(52), पृष्ठ संख्या 54–71.

सारंगपानी, पी. 2010. क्वालिटी कंसर्न— नेशनल एंड एक्स्ट्रा नेशनल डाइमेंशंस. *कंटेंपरेरी एजुकेशनल डाइलाग*. 7(1), पृष्ठ संख्या 4–51.

सिद्दीकी, एम.जेड., के.एल. दत्त, और बी., प्रिचर्ड. 2017. कंसिडरिंग वूमेंस वर्क इन रूरल इंडिया एनालिसिस ऑफ़ एन.एस.एस.ओ. डेटा-2004–05 एंड 2011–12. *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*. 52(1), पृष्ठ संख्या 45–52.

© NCERT not to be republished